अन्नं वै ब्रह्म

गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
अध्यक्ष, राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्

'ब्रह्मादेरपि च लोकस्याहारः स्थित्युत्पत्तिविनाशहेतुः' (सू.46) सुश्रुतोक्त इस वाक्य से अन्न को ब्रह्म के समकक्ष माना गया है। यह भी प्राणरक्षा का आधार होने से किसी ब्रह्मानन्दसहोदर से कम नहीं है - 'अन्नं वृत्तिकराणां श्रेष्ठम्' - 'वृत्तिकराणामिति शरीरस्थितिकराणाम्' (च.सू.25) ब्रह्मत्वप्राप्ति के लिये जिस प्रकार यम-नियम, जप-तप आदि से गुजरना पड़ता है, उसी प्रकार भोजन के शास्त्रोक्त गुणों को प्राप्त करने के लिये भी कई नियमों का पालन करने का विधान है। इन नियमों की परिपालना से ही वस्तुतः सेवन किया गया आहार तृप्तिकारक, सद्योबलप्रद, देहधारक तथा आयु, तेज, उत्साह, स्मृति और शरीरस्थ अग्नि का वर्धक होता है। इन नियमों को विस्तार से जानने के लिये चरकसंहिता विमानस्थान का द्वितीय अध्याय, सुश्रुतसंहिता सूत्र स्थान का 46 वाँ अध्याय तथा अष्टांग हृदय सूर्यस्थान का 8 वाँ अध्याय मननपूर्वक पढ़ना चाहिये।

आयुर्वेद एक आस्तिक दर्शन होने के साथ ही जीवनविज्ञान भी है। यहाँ रुग्ण की चिकित्सा करने का प्रयोजन तो है ही, उससे भी अधिक स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना है। यह केवल व्यक्ति के शरीर से ही सम्बन्ध नहीं रखता, अपितु व्यक्ति की आत्मा, मन एवं इहलोक-परलोक से भी सम्बन्ध रखता है। यही परम्परा आहार के सम्बन्ध में भी व्यक्त की गयी है।

डॉ. श्री अनन्तराम शर्मा, हरिद्वारा का कथन पूर्णतया ध्यान देने योग्य है - 'आयुर्वेदज्ञों ने भोजन एवं भोज्य पदार्थों को लेकर जो वर्णन किया है, वह अपने में ही एक उदाहरण है। जहाँ जब जो कुछ मिला उसे उठते-बैठते, चलते-फिरते, बोलते-टी वी खोलते अन्न को खा लेने की आज की प्रथा के बिलकुल विपरीत निर्देशित है कि आयुर्वेद कृत्य है, एक अनिवार्यता है और सबसे अधिक एक उत्कृष्ट कर्त्तव्य है, जिसे नितान्त गम्भीरता एवं मननपूर्वक सम्पन्न करने के लिये पद पद पर सावधान किया गया है, निर्देशित किया गया है'।

आचार्य चरक बड़ी आत्मीयता से संयत होकर समझाते हैं (च.वि. 10) -

1. सदैव ताजा गर्म भोजन कीजिये, क्योंकि यह स्वादिष्ट लगता है, जठराग्नि को प्रदीप्त करता है, शीघ्र हजम होता है, यह वातानुलोमन होता है और श्लेष्मसंघात को छिन्न-भिन्न करता है।

2. स्नेहयुक्त आहार कीजिये, क्योंकि यह स्वादिष्ट होता है, इन्द्रियों को दृढ़ करता है, शरीर को पूरा पोषण मिलता है और बल की वृद्धि होती है।

3. भुक्त अन्न (पूर्व में खाया हुआ) के जीर्ण होने पर ही भोजन कीजिये, क्योंकि यह दोषों को प्रकुपित नहीं करता, ऐसी अवस्था में बुभुक्षा जागृत होती है, शुद्ध उद्गार आते हैं, हृदय विशुद्ध होता है, वात का अनुलोमन होता है, मल मूत्रादि की सम्यक् प्रवृत्ति होती है एवं शरीर के सर्वधातुओं का पोषण होता है।

4. अविरुद्धवीर्य आहार कीजिये, क्योंकि इससे कुष्ठ, आमवात आदि विकार नहीं होते।

5. अपने इच्छित स्थान पर ही भोजन कीजिये, इससे मनोविघात नहीं होता।

6. न जल्दी जल्दी भोजन करें और न ही अधिक धीरे धीरे भोजन करें। क्योंकि धीरे या जल्दी भोजन करने से पाचन में विकृति होने की संभावना बढ़ जाती है।

7. न हँसते हुए और न अधिक वार्तालाप करते हुये ही भोजन करें। इससे किसी प्रकार की हानि हो सकती है, जो घातक रूप भी ले सकती है।

8. मेरे लिये कौन सी वस्तु लाभदायक है और कौन सी हानिकारक है - इस पर भलीभाँति चिन्तन कर भोजन करने वाला रोगों से बचा रहता है।

9. कोई भी कार्य हो, उसमें सफलता तब ही मिलती है, जब उसे तल्लीनता से किया जाये। भोजन के सम्बन्ध में भी इस नियम को पालन करने हेतु कहा गया है।

10. जिस प्रकार देवार्चन में स्थानशुद्धि तथा कायिक-वाचिक मानसिक शुद्धि (पवित्रता) आवश्यक होती है, उसी प्रकार शुचिता-पवित्रता भोजन के सम्बन्ध में भी वर्णित की गयी है।

मम्मट अपने काव्यप्रकाश में साहित्य गुण गरिमा गाने के अन्तर्गत इसे 'कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे' कहते हैं परन्तु भोजन से सम्बन्धित ये आयुर्वेदीय उपदेश तो इससे भी बढ़कर हैं। इनसे यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य के शरीर में आहार का वही स्थान है, जो सृष्टि में ब्रह्मा का है।

यह आहार हित (संतुलित) हो, मित हो एवं सुमनस्कता युक्त हो। इसी हेतु आचार्य भावमिश्र अशनवेला में मंगलदर्शन का आदेश देते हैं। मन की प्रसन्नता बनाये रखने के लिये धर्मशास्त्र भी 'अशनपूजन' का परामर्श देते हैं। मनुस्मृति अध्याय दो में मनु महाराज 'पूजयेदशनं नित्यम्' के अनुसार कहते हैं-भोजन चाहे जैसा भी हो, सदैव ही

उसकी पूजा करनी चाहिये। भोजन को पूज्य दृष्टि से देखने पर भोजन करने वाले की बुद्धि तीव्र होती है और उसका बल बढ़ता है। भूल कर भी भोजन का अनादर नहीं करना चाहिये। उसका अनादर ब्रह्म का अनादर होता है। उसे 'कृष्णार्पण' कर सेवन करने से भोजन से प्राप्त होने वाले समस्त अभीष्ट लाभों की प्राप्ति होती है। हमें अपने भोजन में ऐसे खाद्य पदार्थों का चयन करना चाहिये, जो शुद्ध सात्विक होने के साथ हमारी ऊर्जा की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाये तथा शरीर के लिये उपयोगी किसी पोषक तत्त्व का अभाव न हो।

भोजन से सम्बन्धित एक बात और है, जिस पर मतिमान् लोग विशेष जोर देते हैं, वह है 'आहारशुद्धौ सत्त्व शुद्धिः'। छान्दोग्यापनिषद् में मन को सौम्य तथा अन्नमय कहा है - 'अन्नमशितं त्रिधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत् पुरीषं भवति, यो मध्यमस्तन्मांसम्, योऽणिष्ठस्तन्मनः'।

उद्दालक और श्वेतकेतु से इस विषय का निश्चय एक परीक्षण द्वारा कराया गया। उनको कुछ दिन भूखा रखा गया। इस स्थिति में उन्होंने जो वेदवेदांग पढ़े, वे कंठाग्र न रह सके। जब उन्हें भोजन दिया गया तो वे पुनः स्मरण हो आये। इससे मन की घटती - बढ़ती कलाओं के बारे में भी निश्चय होता है। लोक में भी यह उक्तिअति प्रसिद्ध है - 'जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन'। गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने सत्रहवें अध्याय में सात्त्विक, राजस एवं तामस आहार का वर्णन कर इसकी उत्तम, मध्यम एवं अधम श्रेणियाँ व्यक्त की हैं।

शाकाहार – जब हम अन्न को ब्रह्मरूप पूजनीय समझ कर उसकी शुचिता-शुद्धता पर बल देते हैं, तो माँसाहार को आहार की श्रेणी में कैसे रख सकते हैं? आचार्य चरक कहते हैं-'अहिंसा प्राणवर्धनानां श्रेष्ठतमा' तो फिर बिना हिंसा के माँसाहार पाया नहीं जाता, अतः हमें समझना होगा कि शाकाहार ही हमारा एकमात्र स्वाभाविक आहार है। हिंसा रहित शाकाहार से सात्विक भावों का उदय होता है, जो शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य की निधि कहे जाते हैं। वैज्ञानिक अन्वेषणों से प्राप्त जानकारी के आधार पर उत्तम एवं स्थायी स्वास्थ्य हेतु शाकाहार की ही प्रधानता तथा श्रेष्ठता है। शाकाहार में तन्तुओं की अधिकता के कारण पाचन ठीक प्रकार से होता है। आँतों की गतिशीलता ठीक बनी रहती है, जिसके कारण अकाल मृत्यु देने वाले घातक रोगों से बचा जा सकता है। पथ्यविज्ञानाचार्य उग्रादित्य कहते हैं, कि माँसभक्षी प्राणियों में धातुपोषण सही नहीं होता है। इसी कारण माँस खाने वाले प्राणियों के दूध, मूत्र आदि औषध के रूप में प्रयुक्त नहीं होते।

कई चिकित्सक शरीर में प्रोटीन की वृद्धि हेतु माँसभक्षण का परामर्श देते हैं, परन्तु वे भूल जाते हैं कि सोयाबीन, दूध, मूँगफली आदि में पर्याप्त प्रोटीन होता है। फिर भी जो चिकित्सक अपनी चिकित्सा में माँसाहार की सम्मति देते हैं, उनके लिये महाकवि दिनकर की यह उक्ति लिखना उपयुक्त होगा-

जानता हूँ लड़ना पड़ा था हो विवश किन्तु

लोहू सनी जीन मुझे दीखती अशुद्ध है।।

'न्यूयार्क ट्रिब्यून' के भूतपूर्व सम्पादक 'हेरिस ग्रीरेले' ने अपने लम्बे अनुभव एवं प्रामाणिक अन्वेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि माँसाहारी की अपेक्षा शाकाहारी अधिक जी सकता है। माँसाहार में जीवनी शक्ति बढ़ाने की क्षमता नहीं होती। मनु ही नहीं अपितु निरामिष पशु-पक्षी भी माँसाहारी पशु-पक्षियों की अपेक्षा अधिक दीर्घजीवी होते हैं। पशुओं में हाथी और पक्षियों में तोते सर्वाधिक दीर्घजीवी होते हैं जो शाकाहारी हैं। ये अन्य जीवों की अपेक्षा बुद्धिमान् भी अधिक होते हैं। मनुष्यों में शाकाहारी व्यक्ति बुद्धिसामर्थ्य और शरीर सम्बल में माँसाहारियों से किसी प्रकार कम नहीं होते, जैसा कि महात्मा गाँधी और बनर्ड शॉ के जीवन से प्रकट होता था। पाश्चात्यों में भी ऐसे कई प्रसिद्धिप्राप्त मनुष्य हुए हैं, जो शाकाहारी थे। उनमें कुछ हैं - कनफ्युसियस, जोरास्टर, मूसा, ईसा, सुकरात, प्लेटो, होमर, न्यूटन, सन्तफ्रान्सिस, फ्रेंकलिन, शैली, दाँते, टालस्टाय, नित्से, एडिसन आदि।

माँस प्राकृतिक भोजन नहीं है। बलकरत्व, पोषकत्व, रुचिकरत्व गुण भी माँस में नहीं है, क्योंकि अन्य द्रव्यों के संस्कार से, उनके मिश्रण से ही ये गुण उसमें मान लिये जाते हैं। माँस अभ्यास से सात्म्यरूप में शरीर के अनुकूल किया जाते हैं, जो कालान्तर में अहितकर ही होता है। माँस के चयापचय में यकृत् एवं वृक्कों को अधिक कार्य करना पड़ता है, जिससे वृक्करोग, रक्तचापवृद्धि, कैन्सर, मधुमेह, मेदोरोग जैसे रोग उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है।

आज पर्यावरण को सुधारने के लिये जब पेड़-पौधों को लगाने एवं उन्हें बचाने की बात आती है, तो उनकी सहानुभूतिपूर्वक सुरक्षा के लिये मनुष्य का दर्यार्द्र होना आवश्यक है। मेरा मानना है कि जो मनुष्य माँसाहारी नहीं होता, वह ऐसे कार्यों में अधिक प्रवृत्त हो सकता है। जो व्यक्ति अपनी जिह्वालोलुपता के वशीभूत होकर जीव-जन्तुओं पर परोक्ष-अपरोक्ष रूप से क्रूरता बरसाता है, वह इन पेड़-पौधों को स्नेह कैसे दे सकता है? वह पर्यावरण सुधार का सहभागी कैसे बन सकता है? तब ही तो शाकाहार के प्रबल पोषक एवं माँसाहार के घोर विरोधी विद्वद्वर श्री चंचलमल चोरडिया पुनः पुनः यही डिंडिमघोष करते सुनायी देते हैं - 'माँसाहार करने वाला मनुष्य क्रूर, हृदयहीन और हिंसक बन जाता है। उस मनुष्य में असहनशीलता, चिड़चिड़ापन एवं वासनायें बढ़ने लगती है। उसमें श्रम करने की इच्छा नहीं होती। उसका शरीर रोगों की ओर जल्दी आकृष्ट होता है। उसकी हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं। माँसाहारी व्यक्ति को चिन्तन करना होगा कि वह माँसाहार कर रहा है या माँसाहार हमारी संस्कृति और सभ्यता को निगल रहा है? हमें स्वीकार करना होगा कि माँसाहार करना सामाजिक अपराध है। यह प्रकृति के विरुद्ध है। यह मनुष्य का आहार कदापि नहीं हो सकता है।'